सबला
उन्नति
परिवार नियोजन
एड्ज़ प्रोग्राम
सहकारी योजनायें
आर्थिक
महिला मंडल + स्वास्थ्य संघ
बच्चों की देखभाल
परिवार की सेहत

सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली

वर्ष 7 : अंक 1 अप्रैल-मई, 1994

सहयोग मंडल
कमला भसीन
मणिमाला
ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका
शारदा जैन

उप-संपादिका
वीणा शिवपुरी
जुही

चित्रांकन
बिंदिया थापर

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात 1
—माधुरी गुप्ता
एक इंटरव्यू 2
—स्नेहमयी चौधरी
जिम्मेदारियां ही जिम्मेदारियां 3
—सुहास कुमार
लगातार 6
—ज्योत्सना
दुश्मनों की ज़रूरत किसे··· 7
—कमला भसीन
रूपा को उसका हक मिला 10
—मणिमाला
नारी: एक दबी सभ्यता 11
चंपा का सपना 12
—वीणा शिवपुरी
हक पाने के लिए 13
—शोभा कुमारी
बंधे पांवों का सफर 14
—जुही जैन
लोगों की सरकार 16
पंचायती राज: कुछ अनुभव 18
एक और जिम्मेवारी 21
—जुही जैन
औरत को मारो: इज्जत बचाओ 23
—विशेष संवाददाता
भावनाओं पर लगाम 25
—वीणा शिवपुरी
मछली व्यापार पर जीने वाले कामगर 27
—एक रपट
'सबला' के लेखों पर चर्चा 29
—अनिता ठैनुआ
मेरी लाड़ली 31
—वीर बहादुर
असमंजस्य 32
—रुनु

हमारी बात

हम औरतें
देखती नहीं अपनी तरफ
सोचती नहीं अपनी बातें
हमारी जिंदगी में
हमारे सपनों में भी
होता है—
घर-परिवार
पति-बच्चे
चूल्हा-चौका
बर्तन-बासन
आग-पानी
झाड़ू-पोंछा
चारा-लकड़ी
ढोर-डंगर
खेत-खलिहान
इतने-इतने काम
पर कहीं भी दीखता नहीं
अपना कोई नाम
आओ अब शुरू करें
एक और नया काम
सीख लें अक्षर-अंक
जान लें सारी बातें
जोड़ लें सारा हिसाब
तभी शायद
हम देख सकेंगी अपनी तरफ
सोच सकेंगी अपनी बातें।

—माधुरी गुप्ता

पोथी की नैया कलम पतवार, पढ़ लें, लिख लें, पहुंचें पार

एक इंटरव्यू

मैंने बच्चे को नहलाती
खाना पकाती
कपड़े धोती
औरत से पूछा
सुना तुमने चालीस साल हो गए
देश को आज़ाद हुए?
उसने कहा—'अच्छा'...
फिर चालीस साल दोहराकर
आंगन बटोरने लगी

दफ्तर जाती हुई
बैग लटकाए
बस की भीड़ में खड़ी औरत से
यही बात मैंने कही
उसने उत्तर दिया
तभी तो रोज़ दौड़ती-भागती
दफ्तर जाती हूं—मुझे क्या मालूम नहीं?

राशन, सब्जी और मिट्टी के तेल का पीपा लिए
बाज़ार से आती औरत से
मैंने फिर यही प्रश्न पूछा
उसने कहा—"पर हमारे भाग में कहां"
फिर मुझे शर्म आई
आखिरकार मैंने अपने से ही पूछा
चालीस साल आजादी के...
मेरे हिस्से में क्या आया
उत्तर मैं जो दे सकती थी, वह था
ड्राइंग रूम में सज-संवरकर, गुड़िया की तरह बैठना
पर पुरुषों से बातचीत करना वह भी पति के सामने
फिर घर की व्यवस्था देखना
घर के स्वामी की आज्ञा का पालन करना
बस इसके आगे, मैं मौन थी
देश की आज़ादी का, हम औरतों से क्या ताल्लुक?
यह प्रश्न औरत के सती हो जाने के साथ
अभी भी जुड़ा है, इसलिए
प्रश्न को परे फैंक, बेमानी समझकर
मैंने उससे जूझने का दायित्व
'दूसरों' पर छोड़ दिया।

—स्नेहमयी चौधरी

ज़िम्मेदारियां ही ज़िम्मेदारियां

सुहास कुमार

"सीमा, मैं बाहर जा रही हूं, भैया का ख्याल रखना, किन्नी के बाल बांध देना।"

"सीमा, मैंने खाना बना दिया है। फुलके तुम बना लेना।"

"सीमा, भैया को चोट कैस लग गई। ज़रा देर ध्यान नहीं रख सकती।"

"सीमा, घर की सफाई मैं नहीं कर पाई, तुम्हीं कर देती।"

घर की बड़ी औरतों के यह बोल हैं जिन्हें सुनती हर लड़की बड़ी होती है।

"खाना बनाना सीख लो। सिलाई-कढ़ाई सीख लो। ज़ोर-ज़ोर से हंसना ठीक नहीं। लड़कों से बात करना ठीक नहीं।"

"यह लड़की तो पराए घर जाकर हमारी नाक कटाएगी।"

यह सारी बातें लड़की को ही संबोधित करके कही जाती हैं। इन सब के पीछे भावना यह होती है कि घर के कामों में मदद करना, छोटे भाई बहनों की देखभाल करना, घर बनाना, घर चलाना, घर की इज्जत बनाए रखना सब औरत की ही ज़िम्मेदारी है।

× × ×

लड़की ससुराल पहुंचती है। अपने घर जो मायके से भी ज्यादा पराया होता है।

"मेरे कपड़े धुल गए?"

"मेरी कमीज़ कहां गई? अरे इस पर इस्त्री भी नहीं की।"

"मां मेरा मुंह धुलवा दो।"

"ज़रा मेरे बाल बना दो।"

"बहू, मेरे सर में तेल लगा दो।"

"मां मेरी किताब कहां गई।"

"तुम देखती क्यों नहीं, बच्चे मेरा पेन क्यों उठा ले जाते हैं।"

"अरे अभी तक खाना ही तैयार नहीं हुआ। मेरे जूते भी पालिश नहीं हुए।"

"तुम सारे दिन करती क्या रहती हो।"

बहू बाहर काम करती है तो और मुश्किल। "बाहर काम करने का यह मतलब नहीं कि तुम घर की ज़िम्मेदारियां भूल जाओ।"

"मेहमानों को चाय बनाकर क्या मैं पिलाऊंगा?"

× × ×

घर का चूल्हा जलाए रखना, सबके भोजन-पानी का इंतजाम करना, घर की, कपड़ों की सफाई, किफायती ढंग से घर चलाना यानी दुगनी-चौगुनी मेहनत करना, घर में किसी भी सदस्य के बीमार पड़ने पर सेवा-देखभाल आदि करना, सबकी ज़िम्मेदारी औरत पर ही है।

कामकाजी महिलाओं की ज़िम्मेदारियां तो और भी बढ़ जाती हैं। घर की ज़िम्मेदारियों से छुटकारा तो दूर, उनका बंटवारा भी करने को पुरुष तैयार नहीं होते। अब जब बेटियां कई बार कमा कर लाने लगी हैं तो मां-बाप, भाई उनके ब्याह की ज़िम्मेदारी भी नहीं उठाना चाहते। बूढ़े मां-बाप की देखभाल करना तो क़ानूनन उनकी ज़िम्मेदारी बन चुकी है।

अब ज़रा दूसरे धरातल पर चलें। पति घर से विमुख है। घर की ओर ध्यान नहीं देता, शराब पीता है, जुआ खेलता है, वैश्यागामी है। वह मनोरंजन चाहता है तो पत्नी में ही कमी होगी! पति को घर से बांधकर रखने की ज़िम्मेदारी पत्नी के ही कंधों पर होती है। पत्नी को मारता-पीटता है तो भी पत्नी ही ज़िम्मेदार है।

लड़कियों या औरतों से छेड़छाड़ की जाती है, शीलभंग या बलात्कार होता है तो यह भी लड़कियों की ज़िम्मेदारी है। "तुम ही सज-धज कर निकली होगी।" "क्या ज़रूरत थी वहां अकेले जाने की।"

पुरुष नपुंसक है, पत्नी के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियां न निभाए, किसी कारण से बच्चे पैदा करने के नाकाबिल है, पत्नी को सब खामोशी से सहना पड़ता है। कितनी आसानी से पति इन सब दोषों के कारण पत्नी को छोड़ देते हैं, पत्नी नहीं छोड़ पाती।

घर में कलह होती है तो औरत ज़िम्मेदार है। बहू के घर से दहेज नहीं आया तो उस पर दबाव डालने, यहां तक कि जान लेने का भार औरत पर डाल दिया जाता है। परिवार नियोजन की सारी ज़िम्मेदारी उसके कंधों पर डाल दी जाती है। रीति-रिवाज़, परंपराएं, धर्म, संस्कृति सबको चलाए जाने की ज़िम्मेदारी औरत पर ही है।

इसका नतीजा

इतनी ज्यादा ज़िम्मेदारियों का बोझा स्त्रियों पर होने का नतीजा होता है अनेक शारीरिक व मानसिक अस्वस्थताएं। अभी हाल में हुए एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन से पता चला है कि भारतीय महिलाएं पुरुषों के मुकाबले में ज्यादा मन से जुड़ी बीमारियों का शिकार हैं। यह बात दूसरी है कि वे मनोवैज्ञानिक चिकित्सक तक न पहुंच सकें।

मन की उदासी (डिप्रेशन), उन्मत्तता आदि मानसिक समस्याओं का औरतें भारी संख्या में शिकार होती हैं। इससे उनकी उत्पादकता पर भी असर पड़ता है।

अध्ययनों से यह भी उभरकर आया है कि कामकाजी महिलाएं घर में 3 घंटे काम करती हैं तो पुरुष 17 मिनट। बच्चों के साथ वह 2 घंटे बिताती हैं तो पुरुष 10 मिनट, पति टी.वी. ज्यादा समय देखते हैं। उनसे एक घंटा ज्यादा सोते हैं तथा खाना ज्यादा इत्मिनान से धीरे-धीरे खाते हैं।

कहने का मतलब यह है कि तमाम ज़िम्मेदारियों की वजह से औरतें तनावमुक्त नहीं हो पाती हैं। यही नहीं, मार-पीट, यौन-हिंसा आदि के कारण भी उनका मानसिक स्वास्थ्य सामान्य नहीं रह पाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपट से यह तथ्य सामने आया है कि प्रसूति, गर्भपात, मृत शिशु जन्मना आदि के कारण भी वे एक मानसिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं। जब तक बच्चा एक वर्ष का नहीं हो जाता वे काफी मानसिक तनाव में रहती हैं।

इसके अलावा जो-जो काम औरतों के ज़िम्मे हैं उन्हें हीन काम समझे जाने की वजह से औरतें हीन-भावना से ग्रस्त हो जाती हैं।

आखिर पुरुषों की ज़िम्मेदारी है कहां। उनका काम है पैसा कमा कर लाना और उसे परिवार की देखभाल पर खर्च करना। पर यह भी कहां हो पा रहा है। हमारे अनुमान से कहीं ज्यादा परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं। इनमें परित्यक्ता, विधवा तथा भारी संख्या में सधवाएं भी हैं जो खुद कमाकर लाती हैं तो घर चलता है। पुरुषों की कमाई का काफी हिस्सा उनका जेब खर्च बनकर रह जाता है।

दोष व्यवस्था का

इसमें दोष हमारी सामाजिक व्यवस्था का है। लड़कों को बचपन से ही खेल-कूद, मौज-मस्ती की पूरी छूट दी जाती है। लड़कियों के साथ घूमने की उन्हें पूरी छूट है। यौनिक-हिंसा, बलात्कार आदि करके भी वे खुले छुट जाते हैं। शुद्धता, सतीत्व, पतिव्रत्य की ज़िम्मेदारी उन पर नहीं थोपी जाती।

इंद्र धोखे से ऋषि पत्नी के साथ शय्या पर सोते हैं। ऋषि पत्नी को पत्थर बनना पड़ता है। इंद्र एक घोड़े की बलि करके पापमुक्त हो जाते हैं। इंद्र अनेक अप्सराओं के साथ मौज-मस्ती करके भी देवता बने रह सकते हैं। अग्नि परीक्षा सीता को ही देनी पड़ती है, राम या लक्ष्मण को नहीं।

दूसरा पक्ष

लड़कों को बचपन से ही ग़ैर-ज़िम्मेदार बनाकर हम कितनी भूल कर रहे हैं। उनको खुली छूट देने का नतीजा है उनका अशिष्ट व्यवहार। हिंसा, यौन-हिंसा के बढ़ते आंकड़े, बिना मेहनत किए जल्दी से जल्दी किसी भी तरह पैसा कमाना यह सब है समाज में बढ़ते अपराध के कारण।

ज़रा सोचें, हम कैसे, कहां, क्या बदलाव ला सकते हैं। समाज या बाहरी प्रभाव को कितना भी दोष क्यों न दें, इन सबके बीज परिवार में ही रोपे जाते हैं। बदलाव भी वहीं से लाना होगा।

एड्स निरोधक—औरत का सतीत्व?

औरतों को हर समस्या, हर बीमारी, हर बुराई का कारण व उनके निदान के लिए ज़िम्मेदार ठहराने का चरम बिंदु जानलेवा

एड्स की बीमारी के संबंध में प्रचार व प्रसार में देखा जा सकता है। वेश्याओं पर तो दबाव डाला जा रहा है कि बिना कंडोम लिए आने वाले ग्राहकों को स्वीकार न करें। लेकिन यह मानकर चला जा रहा है कि पुरुषों को वहां जाने से व कंडोम ले जाने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

बात वेश्याओं तक सीमित रहती तो भी ठीक था। लेकिन अब एक स्वयं सेवी संस्था द्वारा बिंदी और सिंदूर घर-घर पहुंचाया जा रहा है और उसके साथ यह संदेश—ललाट की यह बिंदी सतीत्व और पति के प्रति वफादारी का प्रतीक है। यही सबसे बड़ा एड्स प्रतिरोधक भी है।

अब भला कोई यह बताए कि क्या आम भारतीय गृहणियां घरों में एड्स लाती हैं? क्या उनका सती-सावित्री होना पतियों को पर-स्त्री गमन से रोक सकता है?

मणिमाला जी ने ठीक ही कहा है "अगर 'सुहागा' पुरुष को यह बताया जाए कि वे अपने 'सतीत्व' की रक्षा करें और अपनी पत्नी के प्रति वफादारी निभाएं तो न केवल एड्स की समस्या से छुटकारा मिलेगा, वैश्यालयों से भी समाज को छुटकारा मिलेगा।" □

लगातार

एकाएक
अपने पैरों को देखा तो
भर उठी दहशत से
बरसों पहले जहां गाढ़ा गया था
वहीं खड़ी थी मैं
जिसका
जो मन आया टांगता चला गया
थैला, टोपी, अंगोछा
या अपनी थकान
और लगता रहा सारे वक्त
कि मैं
चलती रही हूं
लगातार

—ज्योत्सना मिलन

''दुश्मनों की ज़रूरत किसे हाथ अपनों के हम पे उठे''

कमला भसीन

बाप-बेटी बलात्कार

पहली मई के इंडियन एक्सप्रैस समाचार पत्र में खबर थीः अपनी बेटी का 1500 बार से भी अधिक बलात्कार करने के जुर्म में एक बाप को दिल्ली पुलिस ने गिरफ्तार किया। बेटी की उम्र अब सोलह बरस है। वह तेरह साल की थी तब से उस के बाप ने उससे बलात्कार शुरू किया था। मां को पता था लेकिन वह खामोश थी, मजबूर थी शायद। बेटी के एक बार गर्भ ठहरा तो मां ने बच्चा गिरवाया, लेकिन बलात्कार फिर भी नहीं रुका। बाद में बाप ने अपनी पत्नी को घर से निकाल दिया और बेटी के साथ जबरदस्ती करता रहा। जब बेटी से और नहीं सहा गया और मां भी घर से निकाल दी गई तो दोनों ने अपनी खामोशी तोड़ी। उन्होंने तथाकथित पिता और पति के खिलाफ़ रिपोर्ट दर्ज कराई। आगे केस का क्या होगा कुछ कहा नहीं जा सकता, पर कम से कम एक वहशी के खिलाफ़ आवाज़ तो उठी, ''सुरक्षित'' परिवारों की अंदरूनी सड़न पर से ढक्कन तो उठा।

बरसों से, या सदियों से यह सड़न परिवारों में रही है, पर उस पर ढक्कन बंद रहा। अब इस गंदगी की बुदबुदाहट से ढक्कन उठने लगे हैं। शायद इसलिए कि हर जगह औरतों के अधिकारों की बात होने लगी है। औरतों को इस बात का अहसास हो रहा है और कराया जा रहा है कि वे भी इंसान हैं, उनके भी मानव अधिकार हैं, ज़ोर-जबरदस्ती सहना उनकी किस्मत नहीं है। यह अहसास महिला आंदोलन की देन है। जगह-जगह शुरू किए गए महिला मंडलों, महिला समूहों, शिक्षा केंद्रों, बलात्कार-संकट केंद्रों ने औरतों को बोलने का मौका और हिम्मत दी है। जगह-जगह खोले जाने वाले महिला-पुलिस केंद्रों, सरकारी क़ानूनों ने भी औरतों का हौसला बढ़ाया है।

इसी माहौल का नतीजा है कि आज बाप-बेटी बलात्कार जैसी समस्या भी खुलकर बाहर आ रही है। हर हफ्ते इस प्रकार की कोई न कोई खबर छपती है। पिछले सात-आठ साल से हमने अपने महिला-शिविरों में परिवार के अंदर होने वाली यौन हिंसा पर बातचीत शुरू की तो पाया कि यह कोई अनहोनी बात नहीं है। देश के अलग-अलग हिस्सों की महिला कार्यकर्ताओं ने ऐसे परिवारों के बारे में बताया जहां बाप बेटी का बलात्कार करता रहा है। कानपुर और दिल्ली के महिला-संकट केंद्रों में आने वाली 30-35 प्रतिशत लड़कियां इसलिए

घर छोड़ कर भागी क्योंकि उनके पिता उनका बलात्कार करते थे। बलात्कार और यौन हिंसा के आंकड़े हमें बताते हैं कि ज्यादातर बलात्कार जान पहचान के लोग यानि रिश्तेदार और परिवार के दोस्त करते हैं। आंकड़े यह भी बताते हैं कि ऐसे बलात्कार हर वर्ग में होते हैं, पढ़े-लिखे, अनपढ़, अमीर-गरीब, डाक्टर, वकील, मज़दूर सब करते हैं। बलात्कार करने वाले शराबी या मानसिक रोगी ही नहीं होते। अच्छे, पढ़े-लिखे, "सज्जन" पिताओं का एक छिपा हुआ बलात्कारी रूप भी हो सकता है और होता है।

यह जुर्म कोई नया जुर्म हो ऐसा नहीं है। सब जानते हैं, और सदियों से जानते हैं कि ऐसा होता है। तभी तो समाज ने इसके खिलाफ़ कड़े क़ानून बनाए हैं। इसीलिए हर समाज में मां, बेटी, बहन की गाली इतनी बुरी मानी जाती है। पूरे वक्त मर्द एक दूसरे को ये गाली देते हैं—यानि कहते हैं—तुम इतने गए गुज़रे हो कि तुम अपनी बेटी, मां या बहन के साथ व्यभिचार करते हो। पर इन गालियों का असर नहीं हैं क्योंकि व्यभिचार चालू है।

यह भी पितृसत्ता का एक और नमूना है। मर्द हर जगह मनमानी करता है, अपनी सत्ता का दुरुपयोग करता है। अपनी हर भूख को अपने तरीके से पूरी करता है। न शर्म है, न समाज का इतना डर कि वो वहशीपन छोड़ दे। इसीलिए तो घरों के अंदर इतनी तादाद में औरतों पर हिंसा होती है।

पर यह खामोशी क्यों?

यह पूछना बहुत ज़रूरी है कि समाज क्यों इस बर्बरता पर खामोश रहता है, क्यों इस पर पर्दा डाले रखता है। लगभग सौ साल पहले महाराष्ट्र

में ज्योती बा फूले और सावित्री फूले ने भी परिवार में होने वाले बलात्कारों का भंडा फोड़ा था। उन्होंने देखा कि "कुलीन" घरों में बाल-विधवाएं गर्भ धारण करती थीं। यानि वो अपने देवर, जेठ, ससुर की हवस का शिकार हो जाती थीं। जब फूले ने ऐसी स्त्रियों को अपने घर में जगह दी तो शहर के कुलीन ब्राह्मणों ने शाबाशी देने की जगह उन्हें बदनाम करना शुरू किया।

पितृसत्तात्मक ढांचे में शायद पुरुष दूसरे पुरुषों को चुनौती नहीं देना चाहते। पुरुष सत्ता पर प्रश्न नहीं उठने देना चाहते। चूंकि परिवार पुरुष सत्ता की जड़ है, वह पुरुष सत्ता को पनपाता है, परिवार के बारे में और भी ज्यादा सन्नाटा है। "घरेलू मामला" है कहकर परिवार के अंदर होने वाली असमानता, अन्याय, हिंसा को पनपने दिया जाता है। नतीजा यह है कि आज औरतों के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक जगह उनका अपना परिवार है। परिवार में ही लड़कियों की भ्रूण हत्या, बाल हत्या होती है, उन्हें भोजन, शिक्षा, मान, प्यार कम दिया जाता है। उन पर यौनिक, मानसिक, शारीरिक अत्याचार भी हो सकता है। परिवार वाले लड़कियों को ग़ैर-मर्दों से डरना और बचना तो सिखा देते

हैं। कम से कम इसके बारे में उन्हें आगाह करते रहते हैं, उन्हें बाहर आने-जाने नहीं देते, उन्हें पर्दा करना सिखाते हैं। पर घर के मर्दों से जो उन्हें खतरा है उस पर सब चुप्पी साधे रहते हैं।

बच्चियों की बौखलाहट और खामोशी

यह अजीब बात है कि बाप-बेटी बलात्कार का भांडा फोड़ने की ज़िम्मेदारी मासूम बच्चियों और कुछ औरतों पर पड़ती है। उन बेटियों की बौखलाहट का अंदाजा लगाना आसान नहीं है जो 5 से 20 बरस की उम्र में अपने पिता की हवस का शिकार होती हैं। उन्हें तो समझ ही नहीं आता कि वो इस आक्रमण को क्या समझें, कैसे समझें और कैसे उसका मुकाबला करें। अपने बाप की शिकायत किससे करें? अगर मां से कहेंगी तो वह उन पर एतबार करेगी क्या? और अगर एतबार कर भी लेगी तो बेबस मां करेगी क्या? वो तो खुद पिता के अत्याचार का शिकार होती है, हर तरह से उस पर निर्भर होती है। अधिकतर मांएं अपनी बेबसी के कारण जानते-बूझते हुए भी खामोश रहती हैं। अगर कुछ बोलती भी हैं तो चुप करा दी जाती हैं। कई क़िस्से ऐसे हैं जहां बेटी ने शिकायत की पर कोर्ट ने उसकी बात नहीं मानी। वह लड़की बदनाम और असहाय हो कर रह गई। इस अत्याचार पर खामोश रहना उसे और बढ़ावा देना है। इसलिए आज यह ज़रूरी है कि औरतें, महिला समूह, स्कूल, सामाजिक कार्यकर्ता बाप-बेटी बलात्कार के बारे में पता करें, सचेत रहें। वो घरों और स्कूलों में ऐसा माहौल पैदा करें कि बच्चियां अत्याचार के बारे में बोलने से घबराएं नहीं। जो लड़कियां और औरतें बलात्कार या यौन हिंसा के खिलाफ़ बोलती हैं वे हिंसा की शिकार नहीं हैं। वे तो हिंसा से मुक्ति चाहने वाली हैं, वे जुझारू हैं, सबलाएं हैं।

'सबला' के पाठकों से हमारा अनुरोध है कि अगर उन्हें बाप-बेटी बलात्कार का कहीं भी पता लगे तो हमें उस के बारे में लिखें, उसके बारे में समाज में चर्चा करें। और बेटियों को इस नर्क से छुटकारा दिलाएं।

स्कूलों, महिला समूहों और परिवारों में बच्चियों को इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि मर्द का कौन सा स्पर्श ठीक है, कौन सा गलत। उन्हें यह अहसास दिलाना चाहिए कि उनका शरीर उनका अपना है। उसे गलत तरीके से छूने का किसी को भी अधिकार नहीं है, चाहे वह पिता हो, या अध्यापक, भाई हो या डाक्टर या कोई और। उन्हें इस बात की हिम्मत देनी चाहिए कि वे किसी के गलत स्पर्श के बारे में अपनी मां, बड़ी बहन, दोस्त, अध्यापक आदि को बताने में घबराएं नहीं। हम सब को ही सतर्क रहना होगा और अपनी बच्चियों को डर और अत्याचार से मुक्त करना होगा। जिम्मेदारी हम सब की है। □

रूपा को उसका हक मिला

मणिमाला

औरत की जुबान बड़ी ताकतवर होती है। वह मुंह खोले तो बहुत कुछ कर सकती है। यह जानने के लिए हमें कोई किताब पढ़ने की जरूरत नहीं है। यह कहानी किसी किताब में नहीं लिखी है। हमारे समाज की है।

रूपा। सतरह साल की लड़की है। मजदूर मां-बाप की बेटी। माता-पिता सफाई कामगर हैं। चार बच्चे हैं। कुल मिला कर परिवार में छह जन हैं। माता-पिता ने दो बेटों को पढ़ाई में लगा दिया। दोनों बेटियों को कमाई में।

एक बेटी को थोड़ा पढ़ना लिखना सिखाया। उसे नर्सरी टीचर की ट्रेनिंग दिलवाई। वह वहीं पढ़ाने लगी। एक लड़की को इतना भी नहीं पढ़ाया। उसे नारायणगढ़ भेज दिया। नौकरानी बनने। रूपा जिसके घर नौकरी करती थी उसके सामने एक विधायक का बेटा रहता था। नाम है संजीव। विधायक का नाम है एस. के. धीमन।

संजीव ने रूपा के साथ मेलजोल बढ़ाया। दोनों में दोस्ती हुई। संबंध बने। फिर वह गर्भवती हो गई। इसी साल 22 जनवरी को पता चल गया कि उसे गर्भ है। पता चलने के बाद उसके मालिक (जिसके घर में काम करती थी) ने उसे वापस मोगीनन्द पहुंचा दिया। यहीं उसके माता-पिता रहते थे। कुछ ही दिन बाद उसे एक बच्ची हुई।

यह बात जंगल की आग की तरह फैल गई। समूचा गांव जान गया कि बहादुर सिंह और सुषमा की बेटी ने एक बच्ची को जन्म दिया है जबकि

उसकी शादी नहीं हुई है। गांव वालों को चिन्ता हुई। आखिर किसने गांव की इस बेटी के साथ ऐसा अन्याय किया।

कई बड़े-बुजुर्ग रूपा के पास गए। उससे पूछा कि यह सब कैसे हुआ। शुरू में तो उसने कुछ नहीं बताया। लेकिन बार-बार पूछने पर संजीव का नाम लिया। यह भी बताया की वह बसपा विधायक एस. के. धीमन का बेटा है।

लड़ाई कठिन थी। एक तरफ सफाई कामगार की नाबालिग बेटी। दूसरी तरफ विधायक का बेटा। फिर गांववालों ने तय किया कि वे लड़ेंगे। बेटी के हक के लिए। गांव की इज्जत के लिए।

उन्होंने पंचायत बुलाई। तय किया कि अगर रूपा चाहेगी तो संजीव से उसकी शादी करवाई जाएगी। रूपा से पूछा गया। उसने कहा कि वह शादी करना चाहती है। गांववाले विधायक धीमन के पास गए। वह नहीं चाहते थे कि गरीब घर की बेटी को बहू बना कर लाएं।

पहले उन्होंने धमकाया। फिर समझाया। कहा,

नाबालिग है। शादी कैसे होगी? नाबालिग की शादी जुर्म है। इस जुर्म के लिए सजा होती है। गांववालों ने पूछा किसी नाबालिग लड़की को गर्भवती बनाना जुर्म नहीं है? रूपा ने भी पूछा कि किसी नाबालिग लड़की को शादी का सपना दिखा कर संबंध बनाना जुर्म नहीं है। रूपा के इन सवालों के सामने विधायक को झुकना पड़ा।

तय हुआ कि संजीव से पूछा जाए। संजीव ने स्वीकार किया कि रूपा का गर्भ उसी से है। उसने कहा कि वह रूपा से ब्याह करना चाहता है। लेकिन उसकी गरीबी से डरता है। रूपा ने फिर सवाल किया। उसने पूछा संबंध बनाते वक्त उसकी गरीबी से डर नहीं लगा था? पत्नी बनाने की बात आई तो डर लगने लगा? इस बीच संजीव के विधायक बाप ने उसे तीन हजार रुपए का लालच भी दिया।

न रूपा मानी और न ही गांववाले। उन्होंने इस लड़ाई को अन्जाम देने की ठान ली थी। वे मुख्य मंत्री के पास गए। जब लगा कि अब वे भाग नहीं सकेंगे तो विधायक महोदय शादी को तैयार हुए। संजीव आधे-अधूरे मन से तो पहले ही तैयार था।

गांव में संजीव आया अपने संबंधियों और मित्रों के साथ। पूरे गांव के सामने शादी हुई और रूपा तेरह दिन के बच्चे को गोद में लेकर ससुराल गई। उसे उसका हक मिला। वह कहती है, पता नहीं आगे क्या होगा। पर गांववाले कहते हैं आगे भी यही होगा। वे निकाल नहीं सकते उसे घर से। तुम्हारा हक है। बेटी को विदा करते हुए पूरे गांव ने कहा, "बेटी, चुप रह कर तकलीफ मत झेलना। इंसाफ के लिए बोलना पड़ता है। मुंह खोलना पड़ता है.....।"

यह तो अच्छा हुआ कि रूपा की शादी संजीव से हो गई। उसके ससुराल वाले इज्जत के साथ ले गए। लेकिन यह काफी नहीं है। **हमें अपनी किशोरवय बेटियों को बताना होगा कि वह किसी के भुलावे में न आ जाएं। जो उसकी गरीबी से डरता है उसे प्यार करने का कोई हक नहीं। वह जो कुछ करे पूरी तरह सोच समझ कर करे।** □

नारी: एक दबी सभ्यता

नारी एक दबी सभ्यता
जिस पर आज टिका हुआ है
खोद के देखो, मिट्टी को तुम हटा के देखो
झाड़ के देखो, हाथों से बस उठा के देखो
किसने घर को लीपा पोता, किसने चूल्हे को लहकाया
किसने जोड़े नाते-रिश्ते, किसने काढ़े फूल-पत्तियां
किसकी कोख से जन्मी सृष्टि
किसको देवी कह बहकाया
सदियों से इस धूल के नीचे
सही गलत के मूल के नीचे
पुरुष के हर स्वार्थ के नीचे, दब गई है कुचल गई है
पत्थर की सब शिला बनी है
मिट्टी की सब ढेर बनी है
मिट्टी को तुम हटा के देखो
झाड़ के देखो, हाथों से बस उठा के देखो।

चंपा का सपना

वीणा शिवपुरी

— "मां, तूने मुझे मेले से खरीदा था क्या?" चंपा ने मां के गले में बाहें डालते हुए पूछा।

— "चल हट, क्या पागलों जैसी बातें करती है। किसने कहा तुझसे?"

— "भैया कहता है। इसलिए तू मुझसे प्यार नहीं करती। सारे दिन डांटती रहती है। काम तो मैं करती हूं और मिठाई भैया को देती है।"

— "अरी तुझे तो कल पराए घर जाना है। अभी से मेहनत करने और रूखा-सूखा खाने की आदत डाल, नहीं तो ससुराल वाले चुटिया पकड़ कर बाहर निकाल देंगे।"

— "तो मां मैं पराए घर जाऊंगी ही नहीं। मैं तो हमेशा यहीं रहूंगी। फिर तो मुझे मिठाई देगी ना?"

— "अरी पागल, ये तो तेरे बापू का घर है। बेटियां हमेशा बाप के घर नहीं रह सकतीं।"

चंपा सोच में डूब गई। फिर बोली—

— "मां यह बापू का घर है, वो पराया घर है। तो मेरा घर कहां है?"

मां उदास हो गई और कुछ न बोली।

— "मां, तू उदास मत हो। मैं खुद अपना घर बनाऊंगी। जहां से मुझे कोई नहीं निकाल सकेगा। तू भी मेरे पास रहना। ठीक है ना?"

कड़वा सच

हंसी-हंसी में दस साल की चंपा ने इतनी बड़ी बात कह दी थी। औरत या तो बाप के घर में रहती है या पति के। विधवा हुई तो बेटे के घर में। जिन दीवारों को लीप मांड कर घर बनाती है, जहां मिट्टी का चूल्हा घढ़ के सबका पेट भरती है, वह उसका अपना नहीं। जिस घर के कण-कण में उसके खून-पसीने और आंसुओं की गंध समाई है, वहां से कोई भी उसे निकाल सकता है। यह हमारे समाज की एक बहुत कड़वी सच्चाई है।

बचपन में कही-सुनी बात चंपा के दिल मे घर कर गई। वह सदा यही कहती मैं खुद अपने घर में रहूंगी। सब बच्ची की बात समझ कर टाल देते।

समय बीतता गया। चंपा बड़ी लगन के साथ पढ़ती रही। हर साल कक्षा में अव्वल आती। सरकार से उसे वजीफ़ा भी मिलता। यह देखकर घरवालों ने भी नहीं रोका-टोका।

सभी लोग कहते थे इस लड़की को कैसी लगन लगी है। घर का काम-काज भी करती।

रात-दिन एक कर के पढ़ाई में भी सबसे आगे रहती है। एक इसका भाई है जिसे खेलने-कूदने से ही फुरसत नहीं। दसवीं कक्षा का नतीजा निकला। चंपा पूरे ज़िले में अव्वल आई। स्कूल के मास्टर जी ने घर आकर चंपा के माता-पिता को बधाई दी।

सपना सच हुआ

कुछ दिनों बाद स्कूल में एक बहुत बड़ा जलसा हुआ। शहर से ज़िलाधीश साहब चंपा को इनाम देने आए। पूरे गांव के सामने उन्होंने चंपा को शाबासी दी और पूछा—

— "आगे क्या करने का इरादा है बेटी?"

— "मैं नौकरी कर के अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हूं, सर।"

— अच्छा! तो पास के गांव के नए स्कूल में अध्यापिका का काम करोगी?"

— "ज़रूर करूंगी। परंतु इस नौकरी के साथ क्या मुझे सरकारी मकान मिलेगा?"

— "हां हां। अध्यापिका का मकान तो स्कूल के अहाते में ही है। लेकिन तुमने यह क्यों पूछा?"

— "सर, मैं बचपन से यही सपना देखती आ रही हूं कि एक दिन मैं खुद अपने घर में रहूंगी। ऐसा घर जो न मेरे पिता का हो, न पति का बल्कि मेरा अपना घर।"

जिलाधीश साहब ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—

— मुझे तुम पर गर्व है चंपा। मैं चाहता हूं हमारी सब बेटियां तुम्हारी तरह आत्म सम्मान और हिम्मत वाली हों।" □

अपना हक़ पाने के लिए

सुनो आततायियो!
औरतों के अस्तित्व को मिटाने वाले
अपने खूनी पंजों से
सृजन की संरक्षिका को
लहूलुहान करने वाले;
उसके हक़ उसकी जायदादों को
अपनी ज्यादती से निगलनेवाले
तुम कर रहे हो बार-बार
औरतों पर जो भी अत्याचार
और पल रहे हैं तुम्हारे जिस्मों में
नापाक इरादे औरतों के लिए
तो फिर सुनो औरतों की आवाज—
अब तक बहुत हुई चीख और पुकार
शोषण, धोखाधड़ी और बलात्कार
अब हम भी जाग उठे हैं
और सब कुछ देख रहे हैं
अपने पर हो रहे अन्याय
हम यह भी देख रहे हैं कि—
रोज-रोज द्रोपदियों का चीर-हरण
और तब हमें कटिबद्ध होना पड़ेगा
होना पड़ रहा है, तुम्हारे मजबूत मंसूबे तोड़ने को
कब तक चुप रहें हम!
हम अतीत को दुहराना नहीं चाहते
पर, कल का बीता हुआ इतिहास
खुद-ब-खुद आज हमें ललकारता है
और तब तुम्हें सबक सिखाने के लिए;
अपना हक़ पाने के लिए;
जूझते हुए समर में
हमारा मन लक्ष्मीबाई को पुकारता है। □

—शोभा कुमारी

संस्कृति के नाम पर

बंधे पावों का सफर

जुही जैन

भारत में औरत को बुर्के-घूंघट में रखने की प्रथा हो या अफ्रीका में महिला-सुन्नत की प्रथा, या फिर चीन में औरत के पैर बांधने का रिवाज, यह सभी संस्कृति और रिवाज़ के नाम पर औरत को दबा कर रखने के तरीके हैं। गले में आधा मन जेवर या नाक में भारी नथनी भी इन्हीं रिवाज़ों में शामिल है। यह सभी कभी सुंदरता के नाम पर, और कभी सुरक्षा के नाम से या कभी धर्म की आड़ में हम पर थोपे जाते हैं। इस तरह यह परंपरा बन जाती है और संस्कृति के नाम पर पीढ़ी दर पीढ़ी चलती जाती है।

चीन के कुछ पिछड़े इलाकों में आज भी औरतों के पैर बांधने की प्रथा जारी है। इस रिवाज़ के बारे में अक्सर पढ़ा तो था, पर पहली बार किसी की आत्मबीती उसकी मुंह-जुबानी सुनकर पता चला कि यह भी हिंसा का ही एक रूप है। मेरी एक चीनी सहेली की अस्सी साल की दादी मां हैं, पिंग ली। जो कुछ उन्होंने बताया वह इस प्रकार है।

पतले और सुंदर पैरों के लिए

मेरा जन्म हसाई के एक पुरातन पंथी परिवार में हुआ था। सात साल की होने पर हमारे परिवार में उनके पैर बांधने की शुरुआत हुई। मां ने शुक्ल पक्ष में एक शगुनी दिन का मुहूर्त निकलवाया। मुझे पता चला तो डर के मारे पड़ोसी के घर जाकर छुप गई। पर मां मुझे जबरदस्ती वापस घसीट लाई। मुझे एक कमरे में बिठा दिया गया। एक

पेटी से छोटे जूते, पट्टा, छुरी, सुई, धागा निकालकर रखा गया। मेरे पैरों को गरम पानी से धोकर नाखून काट दिए गए। फिर शंख-जीरा लगाकर मां ने पट्टा कस के बांधना शुरू किया। वह पट्टा बांधती जाती और पैर की उंगलियों को अंदर की तरफ खींचती जाती थी। दोनों पैर बांधने के बाद, फिर जूते पहनाए गए। फिर मुझे चलने के लिए कहा गया। चलने की कोशिश में मैं दर्द से चीख पड़ी।

मां मुझे जूते उतारने नहीं देती थी। जबरदस्ती चलवाती थी। और मैं मौका पाते ही पट्टी ढीली

कर देती। इस पर खूब पिटाई होती। हर तीन-चार दिन में मां पट्टी खोलकर पैरों की सफाई करती। दस महीने बाद मेरी सारी उंगलियां तलवे से चिपक गईं। मांस खाने पर मेरे पैर सूज जाते और उनसे मवाद निकलती। मां कहती, जैसे-जैसे मांस बहकर निकलता जाएगा वैसे-वैसे पैर पतले और सुंदर हो जाएंगे। पर मैं बहुत दुखी थी। गलती से पैर दब जाता तो खून का फव्वारा निकल पड़ता।

हर पंद्रह दिन में मैं नए जूते पहनती। हर नया जूता एक इंच छोटा होता जाता। मुझे बैठे रहना ज्यादा भाता था, पर मां मुझे मार-मारकर चलने पर मजबूर कर देती। इस तरह दस जोड़ी जूते बदलने के बाद मेरे पैर चार इंच के हो गए।

गर्मियों में सभी मुझे पास बैठने नहीं देते थे। मवाद निकलने से पैरों से बदबू आती थी। सर्दियों में पैर जम जाते थे। अगर सिगड़ी के पास उन्हें तापती तो जलन होती। खुजली होती तो खुजा नहीं सकती थी। चमड़ी कच्ची थी, इसलिए खून आ जाता था। खैर, तीस साल निकले और मेरे पैर तीन इंच के हो गए। पर मुझे अपने पैरों से चिढ़ हो गई थी।

अच्छे पति के लिए

फिर मेरी शादी तय हुई। ससुराल वालों ने पहले मेरे पैर देखे। मां कहती थी छोटा पैर होगा तो अच्छा पति मिलेगा। तू सुखी रहेगी। पर सिर्फ़ मैं जानती थी कि मुझे कितनी तकलीफ होती है। छोटे-छोटे कदम उठाकर चलने पड़ते हैं। शरीर बेडौल लगता है। दो कदम चलने में भी जान जाती है। पर चीनी पुरुष मानते हैं कि पैर बांधने से योनि अधिक रसप्रद होती है। चेहरा ज्यादा खिलता है। कभी मैं सोचती मैं गरीब खेतिहर लड़की होती तो ठीक रहता। खेत में काम करती पर मेरे पैर नहीं बंधते।

विरोध की शुरुआत

चीन में मंचु साम्राज्य के समय इस अमानवीय प्रथा का विरोध हुआ था। पग बंधन विरोधी सोसाइटी की स्थापना भी हुई थी। इस सोसाइटी ने काफी प्रदर्शन किए और लोगों को बताया कि खुले पैर वाली औरतें भी सुंदर और कार्यकुशल होती हैं।

कुछ पुरुषों ने भी साथ दिया। पर इसलिए क्योंकि बंधे पैर वाली औरतें घर का काम नहीं कर पाती हैं। फिर बेकार दवाई का खर्चा। ऐसी औरतें देश के विकास के लिए बेकार हैं। चाहे पुरुषों ने अपने स्वार्थ के लिए ही विरोध किया पर बात लोगों की समझ में आने लगी। और आखिरकार 1902 में घोषणा की गई कि बंधे पैर वाली औरतों को सरकारी स्कूलों में दाखिला नहीं मिलेगा। तब कहीं जाकर यह रिवाज़ कम हुआ।

जीने का संघर्ष

आज यह रिवाज़ ज्यादा प्रचलित तो नहीं है। सरकार के आंकड़ों से यह बिल्कुल बंद है। पर अभी भी पिछड़े इलाकों में इसका चलन है। पर साथ ही अब जागरूकता बढ़ गई है। औरतें खुद इस व्यवहार के खिलाफ़ बोलने लगी हैं। पर यह लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। यह उस समय तक जारी रहेगी जब तक एक भी औरत के पैर सुंदर बनाने के लिए बांधे जाएंगे। यह कोई सत्ता के लिए होने वाला संघर्ष नहीं है। यह तो आधी मानव जाति के जीने के अधिकार का संघर्ष है। □

लोगों की सरकार

बीस अप्रैल 1993 को सरकार ने पंचायती राज अधिनियम का 73वां संशोधन कानूनी रूप से पास कर दिया। अब औरतों की सरकार बनेगी। गांव में खबर आग की तरह फैल गई। सभी तरह-तरह की अटकलें लगाने लगे। "अब मेहरिया दिल्ली जाइब", "इत्ती दूर कइसन जाइबे।" जितने मुंह उतनी बातें। साफ बात किसी की समझ में नहीं आई। इसलिए राजम्मा बहनजी ने घर-घर जाकर दोपहर को पंचायत भवन में मीटिंग बुलाई।

शांति बोली—"बहनजी, यह सब क्या हो रहा है। यह पंचायती राज क्या है?"

रामू काका ने पूछा—"क्यों बेटी, क्या अब सिर्फ़ औरतों की सरकार होगी?"

सावित्री बोली—"पर इससे हमें क्या फायदा होगा? क्या गांव में हैंड पंप लग जाएगा।"

राजम्मा ने बताया, "पंचायती राज का मतलब है लोगों की अपनी सरकार। उनका अपना शासन। गांव की तकलीफें और ज़रूरतों को खुद दूर करने का अधिकार। यह नहीं कि गांव पर हक़ सिर्फ ऊंची जाति के ठाकुर या जमींदार का हो बल्कि सभी जाति के पुरुष और औरतें मिलकर सरकार बनाएं। लोगों के हाथ में सत्ता आने से अपने गांव का भविष्य हमारे अपने हाथ में रहेगा।"

ग्राम सभा

इन सभी बातों को ध्यान में रखकर सरकार ने पंचायती राज विधेयक अप्रैल 1993 में पास कर दिया है। अब हर गांव में एक ग्राम सभा होगी। इस सभा में गांव के सभी अट्ठारह वर्ष के ऊपर

के मर्द और औरत सदस्य होंगे। इस ग्राम सभा की जिम्मेदारियां और अधिकार राज्य विधान मंडल तय करेगी।

पंचायत, ग्राम प्रधान और अवधि

हर ग्राम सभा एक पांच सदस्यों की पंचायत का चुनाव करेगी। यह पंचायत गांव के काम-काज की जिम्मेदारी निभाएगी। इसके अलावा विकास खंड और जिला स्तर पर भी पंचायत चुनी जाएगी। विकास खंड और जिला पंचायत के सदस्यों का चुनाव ग्राम सभा के चुने हुए सदस्य करेंगे।

हर ग्राम पंचायत एक प्रधान चुनेगी। प्रधान के चुनाव की विधि राज्य सरकार तय करेगी। विकास खंड और जिला पंचायत के लिए भी एक प्रधान चुना जाएगा। इस प्रधान को चुने हुए सदस्यों में से चुना जाएगा।

एक बार चुने जाने पर पंचायत पांच साल तक काम करेगी। पांच साल की अवधि खत्म होने से पहले-पहले अगर किसी वजह से पंचायत पांच साल से पहले भंग हो जाती है, तो छः महीने के अंदर ग्राम सभा को नई पंचायत चुननी होगी। यह भी ज़रूरी है कि पंचायत के चुनाव पूरी आजादी और बिना भेद-भाव के किए जाएं। इसके लिए एक चुनाव आयोग बनाया जाएगा। इस आयोग

का अध्यक्ष राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जाएगा।

औरतों और अनुसूचित जातियों के लिए

इस विधेयक का एक खास भाग है अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए पंचायत सीटों का आरक्षण। यह आरक्षण उनकी संख्या के अनुपात में हर पंचायत स्तर पर किया जाएगा। इसके अलावा हर पंचायत के कुल सदस्यों में से एक तिहाई औरतों के लिए आरक्षित हैं। ग्राम प्रधान के पद के लिए भी इस विधेयक में आरक्षण है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनकी संख्या के अनुपात में प्रधान के पद आरक्षित हैं। इसके अलावा एक तिहाई प्रधान पदों पर महिलाएं होंगी।

अधिकार और कर्त्तव्य

— सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास योजनाएं बनाना और इन योजनाओं को लागू करना।
— राज्य सरकार पंचायत को फीस, शुल्क और पथ कर लगाने की इजाजत दे सकती है।
— राज्य सरकार पंचायत के काम के लिए धन की व्यवस्था की जिम्मेदारी निभाएगी।
— राज्य सरकार पंचायत से मिलने वाले धन को जमा करने की योजना बनाएगी।
— इस धन को खर्च करने की व्यवस्था भी राज्य सरकार तय करेगी।

इसके अलावा इस विधेयक के अनुसार राज्य सरकार को एक साल के अंदर एक वित्त आयोग का गठन करना होगा। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायत के धन-संबंधी मामलों का जायजा

लेगा। यह रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल को पेश की जाएगी।

इन सब जिम्मेदारियों के साथ-साथ इस विधेयक ने खास तौर पर कुछ ऐसे विषय चुने हैं जिन्हें पंचायत को सौंपा जा सकेगा। इन विषयों को संविधान की ग्यारहवीं अनुसूचि में रखा गया है। इन क्षेत्रों पर पंचायत स्वतंत्र रूप से काम कर सकती है। उन पर योजनाएं बना सकती है और उन्हें लागू कर सकती है। साथ ही राज्य सरकार से इन योजनाओं के लिए वित्तीय अनुदान की मांग भी कर सकती है। केन्द्र और राज्य सरकार अपने आप इन विषयों को पंचायत से वापस नहीं ले सकते हैं। यह विषय हैं:

— कृषि, भूमि विकास, सिंचाई, पशुपालन मछली पालन, वन, लघु उद्योग, खादी, ग्राम पेय जल, कुटीर उद्योग, ईंधन, शिक्षा, बिजली, बाजार/मेले, स्त्री-बाल कल्याण, तकनीकी प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, समाज कल्याण और सामाजिक वितरण प्रणाली।

अब यह कानून तो बना दिया गया है। ज़रूरत है इसे समझने और लागू करने की। □

पंचायती राजः कुछ अनुभव

पंचायती राज अधिनियम पास हुआ। औरतों को तीस प्रतिशत आरक्षण मिला। औरतों ने बढ़-चढ़कर इस चुनौती को स्वीकारा। उम्मीदें बढ़ीं, खासकर हम औरतों की। कुछ ने हमारा हौसला तोड़ने की भी कोशिशें की, 'अरे ये औरतें क्या कर लेंगी।' पर यह प्रतिक्रियाएं कितनी सही और सच होंगी, या फिर कितनी गलत यह तो समय ही बताएगा। आइए देखें इस विधेयक को लेकर राज्यों में औरतों के क्या अनुभव हैं:

कर्नाटक में पंचायती राज

1987 में जब पंचायतों में महिलाओं के लिए पच्चीस प्रतिशत आरक्षण हुआ तब चौदह हज़ार औरतों का चुनाव हुआ। पर इनमें से ज्यादातर औरतें या तो किसी नेता की पत्नी-बहन आदि थीं, या फिर उनका चुनाव पुरुषों ने करवाया था।

आज के हालात में फ़र्क है। आज जो औरतें चुनी गई हैं, वे अपनी जिम्मेदारी समझती हैं, साथ ही उसे ईमानदारी से निभाने की कोशिश भी कर रही हैं। उदाहरण के तौर पर पंचायत की एक महिला सदस्य को पता चला कि गांव में बनने वाली सड़क के लिए पांच ट्रैक्टर बजरी लगनी है। अचानक हिसाब देखने पर पता चला कि अब तक कुल चार ट्रैक्टर बजरी ही आई है। महिला सदस्य ने फौरन पंचायत में मामला उठाया। जब तक बात का फैसला नहीं हो गया उसने मीटिंग से सदस्यों को उठकर जाने नहीं दिया।

इसी तरह बीजापुर की सुमन कोलहर ने अपने गांव में पानी की व्यवस्था कराने के लिए चुनाव लड़ा। जीतने पर प्रशासन की तमाम दलीलों को नाकामयाब करके उसने गांव में सिंचाई के लिए टैंक का निर्माण कराया। अब गांव में किसानों को सिंचाई के लिए पानी आसानी से मिल जाता है। सुमन को इस काम के लिए जी-तोड़ संघर्ष तो करना पड़ा पर उसने साबित कर दिया कि औरतें अपनी परेशानियों से जूझने में खुद सक्षम हैं। सबसे मजे की बात तो यह है कि अब औरतें अपनी समस्याएं पंचायत की महिला सदस्याओं के सामने आसानी से पेश कर पाती हैं। इससे उनकी हिम्मत और मनोबल बढ़ा है।

पंचायत की महिला सदस्याएं ज्यादा बखूबी से काम करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों की ज़रूरत महसूस करती हैं।

बीजापुर ज़िले में सात सीटों पर औरतें मर्दों के खिलाफ चुनाव लड़ रही थीं। और नतीजा, सातों सीट पर औरतें जीत गईं।

× × ×

एक केस में एक पति ने उच्च न्यायालय में अपील की कि इलाके की एकमात्र आम सीट भी औरतों के लिए आरक्षित कर दी गई है। उसकी पत्नी ने उस सीट के लिए नामांकन भरा है। कोर्ट ने पति की अपील रद्द कर दी।

उड़ीसा का अनुभव

उड़ीसा में ज्यादातर तादाद गरीब, अनपढ़, मज़दूर वर्ग की महिलाओं की है। साथ ही अमीर

और गरीब वर्ग में काफी फासला भी है। फिर भी उड़ीसा सरकार ने पंचायतों में औरतों को तीस प्रतिशत आरक्षण सबसे पहले दिया। पर सामाजिक हालातों की वजह से ज्यादातर औरतें इस प्रक्रिया में हिस्सा लेने के लिए आगे नहीं आ रही हैं।

आरक्षित सीटों पर भी जो औरतें चुनी गई हैं वह महज पुरुषों के हाथ में मोहरे समान हैं। उनका चुनाव किसी की पत्नी, बहन, बेटी होने के नाते किया गया है। नई सामाजिक और राजनीतिक चेतना से भी गांव और पिछड़े इलाकों में लोगों की सोच में बदलाव नहीं आया है। शहरों में भी औरतें राजनीति में आने से कतराती हैं। कई दफा तो ऐसा लगता है कि पंचायत में औरतों की भागीदारी पर जोर देना सरकार का महज एक राजनीतिक हथकंडा है।

इसलिए सबसे ज्यादा जरूरत है औरतों में जागरूकता पैदा करने की जिससे वे खुद-ब-खुद आगे बढ़कर अपने हक़ ले लें।

पश्चिम बंगाल प्रगति के पथ पर

बंगाल में पंचायतों में औरतों की भागीदारी को लेकर जहां एक ओर केन्द्र और राज्य स्तर पर उत्साह है, वहीं दूसरी ओर निचले स्तर पर लोग इसके लिए तैयार नहीं हैं। वे समझते हैं कि इतनी बड़ी जिम्मेदारी औरतें नहीं उठा पाएंगी। फिर भी औरतें काफी उत्साह दिखा रही हैं।

इस प्रणाली के तहत् औरतों के लिए काफी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। मुख्यतः स्वास्थ्य कार्यक्रमों में औरतें काफी सक्रिय रही हैं। कम्युनिस्ट पार्टी (म) के महिला अंग ने गांवों में दहेज प्रथा के खिलाफ आवाज़ उठाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बड़े पैमाने पर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है। लगभग 6300 प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोले जा रहे हैं। करीब दो लाख लोगों को यहां शिक्षा दी जाती है।

एक अहम् कदम भी तजबीज किया जा रहा है। इसके अनुसार पंचायत जब जमीन का वितरण करेगी तब जमीन पति-पत्नी दोनों के नाम पर रजिस्टर की जाएगी। इससे उम्मीद की किरण दिखाई देती है।

महाराष्ट्र की महिला पंचायतें

73वें संशोधन ने तो पंचायत में एक तिहाई

अध्यक्ष पद पर चुनाव लड़ने वाले एक उम्मीदवार ने पंचायत के सभी वोटरों की मीटिंग बुलाई। फिर उन्हें इक्कीस दिन की तीर्थ-यात्रा पर ले जाया गया जिससे चुनाव के समय कोई भी गांव में मौजूद न हो। है न अपहरण का खूबसूरत तरीका।

एक औरत से जब पूछा गया, 'क्या आप ट्रेनिंग में आओगी'। वह बोली, 'हां पर पति, या देवर के साथ, अकेली नहीं। क्योंकि शादी में भी मैं अकेली नहीं जाती'।

एक ग्राम पंचायत में खबर फैली थी कि अध्यक्ष का पद अनुसूचित जाति की औरत के लिए आरक्षित है। इलाके के गुंडों ने जबर्दस्ती उस औरत से जिसकी चुने जाने की संभावना थी कोरे कागज पर दस्तखत करा लिए। थोड़े दिन में ज़िले के कलक्टर को खबर मिली कि खराब सेहत के कारण वह औरत चुनाव नहीं लड़ना चाहती। पर जांच से पता चला कि उसे कोई बीमारी नहीं थी। क्या यही प्रजातंत्र है!

× × ×

उमा—उत्साही महिला अभ्युदय

दिसंबर 1992 में सरकार ने 73वें संशोधन द्वारा पंचायत में एक-तिहाई सीटें औरतों के लिए आरक्षित कर दीं। पर इस भागीदारी से यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि औरतें अपने इस अधिकार को बखूबी इस्तेमाल कर पाएंगी। इसका मतलब यह भी नहीं है कि पंचायत में आने वाली सभी औरतें कार्यकुशल और होशियार होंगी। इस समस्या को दूर करने की दिशा में इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल स्टडीज़ ट्रस्ट ने प्रोजेक्ट उमा के तहत् पंचायत में शामिल औरतों को प्रशिक्षण देने के लिए कार्यक्रम तैयार किया है। इस ट्रेनिंग प्रोग्राम के तहत् कर्नाटक में औरतों की दो तरह से मदद की जाएगी। पहला, संदर्भ सामग्री के लिए एक केंद्र उमा यानि उत्साही महिला अभ्युदय खोलकर। वहां से जानकारी का वितरण किया जाएगा। इसके माध्यम से पंचायती राज पर काम करने वाली संस्थाओं से संपर्क बनाया जा सकेगा।

इस प्रोजेक्ट का दूसरा काम है कर्नाटक के चार ज़िलों में चुनी गई पंचायत सदस्याओं को प्रशिक्षण देना। इसके साथ 'उमा' पंचायती राज मुद्दे पर काम करने वाली संस्थाओं से जानकारी इकट्ठी करके उसे दूसरे केंद्रों तक पहुंचाने का काम भी करेगी। उमा की इस मदद से चुनी हुई महिला सदस्याओं को अपनी स्थानीय ज़रूरतों को ध्यान में रखकर योजनाएं बनाने में आसानी होगी।

इस लिए पंचायती राज पर जानकारी के लिए लिखें— □

डायरेक्टर
इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल स्टडीज़ ट्रस्ट
न.-57, फर्स्ट फ्लोर, 16th क्रॉस
गायत्री देवी पार्क एक्सटेंशन
व्यालिकवल,
बगंलौर-560003
फोनः 340315

भागीदारी की सिफारिश की थी। पर महाराष्ट्र ने आगे बढ़कर एक रिकार्ड बनाया है। यहां नौ ग्राम पंचायतों के सभी पदों पर महिलाएं हैं। यह पंचायत सही मायने में लोगों की जरूरतें प्रशासन के सामने पेश करती है।

ब्राह्मण गढ़ की महिला पंचायत को एक मुख्य बिन्दु के रूप में देखा जा सकता है। पंचायत ने शराब की बिक्री बंद करने के अलावा औरतों के लिए घरेलू उत्पादक योजना की मांग रखी है। महिला पंचायत यहां इसलिए बखूबी काम कर पा रही है क्योंकि यहां पर महिला जागरूकता का लंबा इतिहास रहा है। सामाजिक और विकास संबंधी मुद्दों पर पहले से ही वे काम करती रही हैं। इसलिए उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लिया। कुछेक तो निर्विरोध भी चुनी गईं।

इससे एक बात साफ हो जाती है कि पंचायतों में औरतों की सक्रिय हिस्सेदारी, पंचायतों को ज्यादा जवाबदेह, प्रभावी और प्रगतिशील बना देती है।

'हमारी चिट्ठी आपके नाम'—वीहाई। 'निरन्तर', 'आई.एस.एस.टी.'—उमा प्रचार, से प्राप्त जानकारी पर आधारित

एक और जिम्मेवारी

कर्नाटक की सुश्री पद्मा के अनुभव

"पंचायती राज विधेयक पास हुआ। पंचायतों में औरतों की भागीदारी होगी। आशा जागी। उम्मीदें बढ़ीं। औरतें कमर कस मैदान में उतर पड़ीं। सरकार ने अपनी पुरानी चाल चली। पंचायती राज कार्यक्रम की सफलता का ज़िम्मा भी औरतों के कंधे पर डाल दिया। साथ ही सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों से इन औरतों को विधिवत ट्रेनिंग देने के प्रयासों को जोर-शोर से लागू करने की कोशिशें भी की गईं। ऐसा इसलिए कि सरकार अपने मौजूदा ढांचों को बरकरार रखना चाहती है। असमानता और गैरबराबरी के ढांचों को। इससे हमारी जिम्मेदारियां और बढ़ गई हैं।"

यह सोच है श्रीमती एम. वी. पद्मा की। पद्मा नेलामंगल मंडल पंचायत, कर्नाटक की सदस्या हैं। 54 साल की यह महिला देखने में किसी भी आम औरत की तरह नज़र आती है। पर उनकी उमंग और काम करने का हौसला देखते ही बनता है।

पद्मा का जन्म महाराष्ट्र के कारड ज़िले में हुआ था। एस. एस. एल. सी. की पढ़ाई पूरी करके 1966 में कर्नाटक में शादी हो गई। दो बच्चे हुए। अड़तीस साल की उम्र में उन्होंने घर की चार-दीवारी के बाहर अपना कदम राजनीति में रखा। पढ़ी-लिखी और मराठी, कन्नड़ और हिन्दी भाषा में पारंगत होने की वजह से कुछ ही समय में उन्होंने बड़ा नाम कमा लिया।

1978 में पद्मा ने पहली बार जनता दल के टिकट पर नेलामंगल नगरपालिका का चुनाव लड़ा और जीता। लगातार तीन बारी चुनाव जीता और नगरपालिका की सदस्या बनी रहीं। पंचायती राज विधेयक पास होने पर इस नगरपालिका को मंडल पंचायत का दर्जा दिया गया। उस समय पद्मा नगरपालिका में काउंसिलर के पद पर थी। अब वह इस मंडल पंचायत की सदस्या हैं।

कुछ शुरुआतें

पद्मा कहती हैं कि नगरपालिका को मंडल पंचायत का दर्जा मिलने से काफी फायदा हुआ है। पहले औरतों के लिए बनने वाली सभी योजनाओं की जिम्मेदारी नगरपालिका के अधिकारियों की थी। पर अब मंडल प्रधान को औरतों, बच्चों और समुदाय के लिए कल्याणकारी योजनाएं शुरु करने की आजादी है।

अब तमाम विकास के काम जैसे, पीने के साफ पानी की व्यवस्था, सड़क निर्माण, बच्चों के लिए बालवाड़ी, वज़ीफे और होस्टल, रोज़गार योजनाएं आदि काम हम खुद कर पाते हैं। खासकर जबसे बंगलौर के जिला परिषद् ने नेलामंडल पंचायत के काम की देख-रेख की जिम्मेदारी संभाली है, तबसे काफी कार्यक्रम हमारे हाथ में आ गए हैं।

लड़कियों को जाति और आय के आधार पर वज़ीफे देने के लिए भी अब हमें काफी पैसा मिल

पाता है। स्कूल भी काफी खुल गए हैं। पहले हमें हर काम के लिए बंगलौर आना पड़ता था, पर अब यही काम हम अपने मंडल में कर पाते हैं।

औरतों के हालात—तब और अब

जब मैंने राजनीति में पहला कदम रखा था, तब के हालात आज से बहुत अलग थे। समाज बहुत रूढ़िवादी था। लोग पुराने ख्यालात के थे। एक औरत का इस तरह घर से बाहर निकलना, मर्दों के दायरे में काम करना बुरा माना जाता था। उस समय लोग मुझे कहते, "इसके घर में कोई काम नहीं है, इसलिए बाहर सड़क पर घूमती है।"

आज यह नजरिया बदल गया है। आजकल औरतें हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ मिलकर काम करती हैं। समाज में उनकी एक अलग पहचान है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की औरतें भी साथ आ रही हैं। हमारे मंडल में छः औरतें हैं और सभी मिलजुल कर अच्छा काम कर रही हैं। और मेरी उम्मीद है कि धीरे-धीरे औरतों की संख्या में बढोत्तरी होगी।

हम लोगों ने अपने मंडल की औरतों के विकास के लिए महिला मंडल और आंगनवाड़ियों की शुरुआत करी है। इससे काफी औरतें काम के लिए मंडल में आने लगी हैं। और बढ़ी है इससे सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता की प्रक्रिया।

ज़रूरत है

पर पद्मा को इस पंचायती राज विधेयक की कुछ बातों पर ऐतराज भी है। वह मानती है कि औरतों के लिए तीस प्रतिशत आरक्षण से उन्हें मौके मुहैया होंगें। लेकिन दूसरी ओर सभापति के पद का भी सिर्फ औरतों के लिए आरक्षित होना ठीक नहीं होगा। ऐसा इसलिए क्योंकि ज्यादातर औरतें पढ़ी-लिखी नहीं हैं। वे राजनीति में भी नई हैं। इसलिए इस काम को बखूबी संभालने में उन्हें कम से कम पांच साल का समय लगेगा। वे इस सत्ता को अभी अच्छी तरह इस्तेमाल भी नहीं कर पाएंगी। इसलिए ज़रूरत है पहले औरतों को प्रशिक्षण देने की। इससे अपनी जिम्मेदारी समझकर वह अच्छा काम कर पाएंगी।

दूसरा, सिर्फ सीट आरक्षित करना ही औरतों की भागीदारी की गारंटी नहीं है। ज़रूरत है काबिल और अनुभवी औरतों की। बिना जागरूकता के यह संभव नहीं है। औरत होने के साथ-साथ हिम्मत और सेवा-भाव भी ज़रूरी होता है।

हम सहमत हैं श्रीमती एम. वी. पद्मा के विचारों से। अब जब हमारे हाथ में सत्ता आ गई है तो इसका पूरी तरह से इस्तेमाल करना भी हमारा फ़र्ज है। पर पहले पुराने ढांचें की खामियों को दूर करना होगा। गैरबराबरी की खाइयों को पाटने के लिए प्रयास करने होंगें। जागरूकता बढ़ानी होगी। तभी सही मायने में प्रजातंत्र और लोगों की सरकार होगी। □

औरत को मारो: इज़्ज़त बचाओ!

हमने पहले भी 'सबला' में औरत से जुड़ी खानदान की इज्ज़त का सवाल उठाया है। इज्ज़त के नाम पर घर की बहू-बेटियां जलाई और मारी जाती रही हैं। कभी उसे सती और जौहर के बड़े-बड़े नामों से पुकारा गया। कभी खुद भाइयों और पिताओं ने उनका गला काट डाला। इतिहास इन कहानियों से भरा पड़ा है। आज का समाज इन उदाहरणों से भरा पड़ा है। कोई माई का लाल इन हत्यारों पर उंगली नहीं उठाता, बल्कि उन्हें वीर सूरमा का दर्जा दिया जाता हैं। हंसी आती है जब आठ दस परिवार वाले, पंचायत वाले या गांववाले मिल कर एक लड़की या औरत का कत्ल कर देते हैं और अपने आपको बहादुर समझते हैं। वाह रे, भारत के सूरमा मर्द।

आज माई के लालों में तो दम नहीं है, लेकिन हम औरतें ज़रूर यह आवाज़ उठाएंगी। किसने समाज को यह हक़ दिया कि वह खानदान की इज्ज़त का बोझ औरतों पर डाल दे। किसने मर्दों को यह हक़ दिया कि वही फ़रियादी और वही जज बन कर फैसला दे दें और गर्दन कटे एक औरत की!

हत्या पे हत्या

फिर एक बार घर के बाप, चाचा ताऊओं ने मिल कर सतरह बरस की लड़की को गंडासे से काट दिया। हरियाणा के नया गांव में सैनी खानदान ने अपने घर की बेटी को इसलिए मार दिया कि वह एक अहीर लड़के से प्यार करती थी। सिर्फ ग़ैर-जात के लड़के से प्यार करना ही उसका दोष नहीं था। उसका सबसे बड़ा दोष था कि उसने परिवार के सामने तन कर कह दिया कि वह शादी करेगी तो सिर्फ़ उसी लड़के के साथ।

एक लड़की होकर अपना फ़ैसला खुद लेने की हिम्मत की!

एक लड़की होकर मर्दों के सामने डटने की हिम्मत की!

औरत की इस हिम्मत से मर्द डरता है। उसकी गद्दी डोलने लगती है। और तभी घर के सारे मर्द, बाप, भाई जो कल तक उसके लाडले थे आज खून के प्यासे बन जाते हैं। जिसे गोद खिलाया उसके टुकड़े करने में उनका हाथ नहीं कांपता?

कट्टरपंथी सोच

अपनी सत्ता को सर्वोपरि समझना। औरत को सिर्फ़ हुक्म की गुलाम मानना। इस तरह की सोच इन मर्दों के दिमाग में बहुत गहराई तक घुसी हुई है। बचपन से इन्हें अपने बड़प्पन की घुट्टी पिलाई जाती हैं। ये मान कर चलते हैं कि घर की औरतों को इनकी मर्जी के रास्ते पर चलाना इनका हक़ है। अगर कोई औरत न माने तो उसे सज़ा देना भी इनका हक़ है।

क्यों? क्या भगवान ने इन्हें चार हाथ या दो दिमाग़ दिए है?

किस तरह से ये औरत से ऊंचे और बेहतर हो गए?

लड़की के प्यार करने से या अपनी मर्ज़ी का मर्द चुनने से किसी इज्ज़त को आंच आती है, यह सब बकवास है। जब घर के मर्द चाहते हैं तो ससुर भी बहू की इज्ज़त लूटता है। खुद पति अपनी पत्नी को अपने दोस्त या भाई के साथ सोने को मजबूर करता है। खुद मर्द गली-गली मुंह काला करते हैं। तब किसी को कानों-कान खबर नहीं होती। कोई माथा नहीं ठनकता।

मर्द के हाथ की कठपुतली बनने से इंकार करना, खुद अपना फैसला लेना ही इस पितृसत्तात्मक समाज से बर्दाश्त नहीं होता।

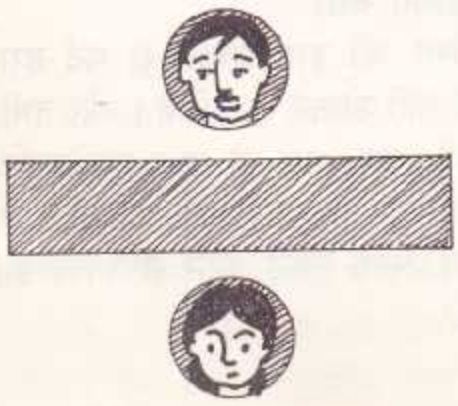

इस तरह की पारिवारिक हत्याओं को समाज भी बढ़ावा देता है। सबकी मिलीभगत यही है कि एक हत्या से दस और लड़कियां डर जाएंगी। ऊपर उठने की कोशिश करने वाले सिर फिर से झुक जाएंगे।

रोहतक ज़िले के एक पुलिस अधिकारी का कहना है कि पिछले साल दो भाइयों ने अपनी पत्नियां बदलनी चाहीं। जब एक औरत ने इंकार किया तो भाइयों ने मिल कर उसे मार डाला। एक औरत को इसलिए मार दिया कि उसने ससुर के साथ सोने से इंकार कर दिया। अब इस लड़की को इसलिए मार दिया कि उसने अपनी मर्ज़ी से मर्द चुना।

सोचिए, कौन सी इज्ज़त का सवाल है?

हां, अपने हक़ की इस लड़ाई मे कई औरतों की जानें जाएंगी क्योंकि वे अकेली हैं। मर्द सब एक तरफ़ हैं। मैं पूछती हूं उस खानदान की औरतों से, उस लड़की की मां, चाची, ताई से। क्यों चुपचाप बैठी देखती रहीं जब एक लड़की को मारने की योजना बन रही थी? वो सब तो एक साथ मिल गए। ताक़तवर बन गए। औरतें अलग-अलग बंटी हुई कमज़ोर हो गईं। अब रोती हैं घूंघट में मुंह डाले हुए, अपनी बेटी के लिए ही नहीं खुद अपने लिए भी।

उठो। एक हो जाओ, ताकत पाओ।

विरोध करो हर ऐसे अन्याय का।

तुममें हिम्मत है। तुम कमज़ोर नहीं।

सिर्फ़ पहचानो अपनी हिम्मत को। चाहे पन्द्रह साल की बच्ची हो या पचास साल की बूढ़ी। एक बार तो मिल कर खड़ी हो जाओ। देखें कितने सिर काटते हैं? □

भावनाओं पर लगाम

वीणा शिवपुरी

काफ़ी समय से मेरे मन में कुछ विचार उठ रहे हैं जिन्हें मैं सबके साथ बांटना चाहती हूं। मुमकिन है कोई सार्थक बहस पैदा हो। यहां मैं अपने, सबके बारे में बात करना चाहती हूं। जो औरतों के मुद्दों से जुड़ कर काम कर रही हैं और खुद भी औरत हैं । वे सभी औरतें जो किसी न किसी स्तर पर अन्याय और शोषण से जुझ रही हैं या उसकी सीधी शिकार हैं।

मन का लावा

हमने देखा है कि चेतना और जागरूकता के साथ अन्याय और शोषण का अहसास तेज़तर हो जाता है। आशा, निराशा और जोश जैसी भावनाओं से पैदा होती है तेज़ गुस्से की भावना और मरने मारने की इच्छा। सामान्य रूप से समाज और पुरुष के खिलाफ गुस्से का लावा इकट्ठा हो कर अपने आस-पास बिखरने लगता है।

गुस्से की भावना सकारात्मक हो सकती है यदि हम उसे अपनी ऊर्जा बना सकें। अपनी ताक़त बना सकें। यदि वह हमें काम करने और डटे रहने के लिए प्रेरित कर सके। बेलगाम गुस्सा न सिर्फ़ व्यक्तिगत जीवन और संबंधों को तहस-नहस कर सकता है, बल्कि हमें कड़वाहट से भरा नकारात्मक व्यक्तित्व देता है। उससे न खुद अपना विकास होता है और न आंदोलन को मदद मिलती है।

अपने जाती अनुभव से मैंने जाना कि कई बार भावनाएं हम पर हावी हो जाती हैं। या यूं कहें कि बेकाबू हो जाती हैं। वह भावना चाहे निराशा, दुख, जोश, बेबसी की हो या फिर नफ़रत और गुस्से की। बेकाबू भावना हालात में बदलाव तो कम ही ला पाती है, परंतु हमें शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार जरूर कर सकती है।

आखिर क्या करें?

यह सच है कि मारपीट, बलात्कार, दबाव, अपमान और अन्याय की घटनाएं मन में आग पैदा कर देती हैं। औरत होने के नाते वे सब दुख हमें अपने लगने लगते हैं। ऐसे में भावनाओं में बह जाना कोई ताज्जुब की बात नहीं।

इसीलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अपनी नकारात्मक भावनाओं को सकारात्मक रास्तों पर डालना सीखें। उन्हें सीमाओं में बांधना, उनसे निपटना जानें।

मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि हमारी कथनी और करनी में फ़र्क हो। मैं तो यह कहना चाहती हूं कि हमारी सोच, हमारे रवैयों और कार्रवाइयों का आधार सिर्फ भावनाएं न हों। उनके साथ व्यवहारिकता और तर्क का गठजोड़ हो, तभी संतुलन क़ायम रह सकता है।

एक तरफ कुआं, दूसरी तरफ खाई

एक ओर हम सख्त गुस्सा और नफ़रत पालने की भूल कर सकती हैं। दूसरी ओर कभी-कभी अपने दुखों में डूब जाने की भूल भी करती हैं।

यह सच है कि दमन और उत्पीड़न की शिकार औरत उदासी और अकेलापन महसूस करती है। उसे सहारे और दर्द में साझेदारी की ज़रूरत होती है। इस तरह का बहनापा और प्यार दे पाना नारी आंदोलन और संगठनों की ताक़त रही है। परंतु यह ताक़त कमज़ोरी में भी बदल सकती है। यदि इस सहारे और साझेदारी के ज़रिए औरत मज़बूत बनने की जगह अपनी भावनाएं सहलाए जाने की आदी बन जाए। या फिर दुख की दुनिया में डूब कर जीवन की धारा से कट जाए।

यह सही है कि बलात्कार, यौन उत्पीड़न और मारपीट के घाव मन पर ज्यादा गहरे लगते हैं। पर यह भी सही है कि यदि उनसे लड़ना है तो अपने आपको बेचारी, दुखियारी मान कर आंसू बहाने से काम नहीं चलेगा। और न ही उन जख्मों को तमग़े की तरह छाती पर चिपका कर जीवन भर के लिए शहीद बनने की ज़रूरत है।

बांध बांधें

अपने दर्द से निपटने, अन्याय से लड़ने और हादसों के बावजूद भरपूर ज़िंदगी जीने की ताक़त खुद अपने ही अंदर ढूंढनी पड़ती है। उस ताकत को पाने की प्रक्रिया में ज़रूर संस्थाएं व सहेलियां मददगार हो सकती हैं।

— इसके लिए ज़रूरी है कि हम समस्याओं को सही परिपेक्ष्य में देखें।
— कभी-कभी उनसे अलग हट कर ज़रा दूरी से जांचें।
— अपने भीतर जीने की इच्छा शक्ति और आत्मिक ताक़त पैदा करें।
— कड़वाहट और निराशा की जगह बदलाव लाने का आशावादी नजरिया रखें।
— कई बार ध्यान व आध्यात्म से भी मानसिक संतुलन मिलता है।
— किसी 'वाद' या 'सिद्धान्त' को न पकड़ कर अपनी दवा खुद ढूंढे।

महिला संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की कोशिश होनी चाहिए कि हादसे की शिकार औरत भावनात्मक रूप से अपने पैरों पर खड़ी हो पाए।

सारांश

संघर्ष करने, नई दुनिया बनाने के लिए जोश, उत्साह, आशा और गुस्से की ज़रूरत है। हम सभी इंसान हैं, कभी निराश भी होती हैं तो कभी उदास भी। कभी सहारा देती हैं तो कभी दूसरों से चाहती हैं। भावनाएं हमारी ज़िंदगी का अहम हिस्सा हैं। परंतु चौकस रहने की ज़रूरत है कि हम अपनी ज़िंदगी और ये दुनिया बेहतर बनाने के लिए भावनाओं का इस्तेमाल करें, न कि खुद उनके हाथों की कठपुतली बन जाएं। □

मछली व्यापार पर जीने वाले कामगर

यह कैसा विकास?

आज ज्यादातर लोगों के लिए जी पाना ही एक बड़ी लड़ाई है। कई क्षेत्रों में विकास के नाम पर ऐसे बदलाव आए हैं कि लोगों के लिए जी पाना और मुश्किल हो गया है।

हमारे पुराने काम धंधे साधारण औज़ारों से होते थे। उनसे उत्पादन कम था लेकिन वे प्रकृति के साथ दोस्ती बना कर रखते थे। आज विकास का मतलब समझ लिया है ज्यादा उत्पादन। इस कारण जगह-जगह मशीनों और रसायनों का इस्तेमाल बढ़ा है। इन चीज़ों ने उत्पादन तो बढ़ाया है लेकिन प्रकृति को नुकसान पहुंचाया है। आम छोटे कामगरों का धंधा चौपट कर दिया है। फ़ायदा हुआ है तो बड़े पूंजीपतियों का जिनके पास मशीनें लगाने का पैसा है।

विकास का मतलब ग़रीब को और ज्यादा ग़रीब तथा अमीर को और ज्यादा अमीर बनाना तो नहीं है ना? फिर ऐसा क्यों?

मछली व्यापार

मछली पकड़ने, साफ़ करने, सुखाने, बेचने का धंधा बहुत पुराना है। न सिर्फ़ समुद्र तट पर रहने वाले लोग इसमें लगे हैं बल्कि लाखों लोग तालाबों, नदियों और नालों से भी मछली पकड़ते हैं। अंधाधुंध मशीनीकरण का असर इस धंधे पर भी पड़ा है। अब छोटे, लकड़ी की नाव वाले या किनारों पर जाल डालने वाले मछली कामगरों के लिए जीना, पेट भरना भी मुश्किल हो गया है।

विदेशों में मछली की बढ़ती मांग को देख कर बड़े-बड़े उद्योगपति इस धंधे में आ गए हैं। साथ लाए हैं इंजन से चलने वाली ताक़तवर नावें, बेहतर जाल और कभी-कभी बारूद भी।

उन्होंने समुद्र की छाती चीर कर रख दी है। मछलियां ही नहीं, उनके अंडे बच्चे, अन्य समुद्री जीव भी नष्ट हो रहे हैं। समुद्री दुनिया तो तहस-नहस हो ही रही है, रोज़ मछली पकड़ने और बेचने वाले मछुआरे और मछुआरिनों की रोजी-रोटी छिन गई है। ज़ाहिर है भूखे मर रहे लोग विरोध करेंगे।

केरल स्वतंत्र मछली कामगर फेडरेशन

सन् 1981 से यह संस्था लगातार बढ़ते मशीनीकरण और समुद्री पर्यावरण के विनाश के खिलाफ़ संघर्ष कर रही है। केरल में बड़े समुद्री तट के अलावा बहुत लम्बे जल मार्ग हैं जो ज़मीनी इलाके के भीतर तक फैले हुए हैं। यहां बहुत बड़ी संख्या में लोगों की जीविका मछली पर निर्भर करती है। यहां फैडरेशन लगातार आंदोलन, भूख-

हड़ताल, बंद व प्रदर्शनों के ज़रिए सरकार पर दबाव डालने की कोशिश कर रही है। इस आंदोलन में मर्द व औरतें बराबर भाग ले रहे हैं।

औरत मछली कामगर

सदियों से मर्द व औरतें इस धंधे में बराबर के भागीदार रहे हैं। मर्द अगर नावों में बैठ कर समुद्र में मछली पकड़ने जाते थे तो औरतें पकड़ी हुई मछली को साफ़ करने और बेचने का काम करती थीं। वे मछली साफ़ करके डिब्बा बंद करने वाली फैक्ट्रियों में भी काम करती हैं। औरतों की कमाई घर की आमदनी का करीब 30 फी सदी होती है।

मछली उद्योग पर पड़ने वाले बुरे असर का ज्यादा बुरा असर औरतों पर पड़ा है। क्योंकि एक तो वे ग़रीब है, दूसरे औरत हैं। अब उन्हें बेचने के लिए मछली अपने समुद्र तट पर नहीं मिलती। या तो उन्हें दूर जाना पड़ता है या फिर थोक बाज़ार से खरीदना पड़ता है। इसलिए मुनाफ़ा कम हो गया है।

जो औरतें फ़ैक्ट्रियों में काम करती हैं वहां भी उनका शोषण होता है। सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक कमरतोड़ मेहनत करती हैं। दोपहर में खाने के लिए सिर्फ़ एक घंटे की छुट्टी मिलती है। कभी-कभी रात भर काम करना पड़ता

है। जब भी माल आता है तभी काम पर बूला लिया जाता है। इस सबके बाद न नौकरी की कोई सुरक्षा है, न ही पूरी मज़दूरी। इसके अलावा घरों में उनके हाथ में कोई ताक़त नहीं है। परिवारों में लड़कियों की मृत्यु दर अधिक है। घर और बाहर दोहरी मेहनत करने के बावजूद इनके पास कोई निर्णय लेने की शक्ति नहीं है।

चेतना

अब कई महिला संगठन इन औरत मछली कामगरों की समस्याओं को उठा रहे हैं। उनके पारिवारिक और कार्य जीवन में मर्दों की सत्ता को चुनौती दे रहे हैं।

फैडरेशन के स्तर पर तीन मुद्दे उठाए गए हैं—

1. फैडरेशन के पुरुष सदस्यों का अपनी पत्नियों के साथ व्यवहार।
2. शराबखोरी और उससे जुड़ी समस्याएं
3. फ़ैसले लेने की प्रक्रिया में औरतों की भागीदारी।

महिला संगठनों की मदद से कई मार-पीट, बलात्कार और हत्या के मामलों में अपराधियों को सज़ा मिली है। इस संघर्ष में मछुआरिनों की लड़ाई दो तरफ़ा है। एक तो मछुआरिन होने के नाते पेट भरने की लड़ाई, दूसरी तरफ़ औरत के नाते इज्ज़त पाने की लड़ाई। □

सबला के लेखों पर चर्चा

—अनिता ठैनुआ

गांव बरसों का नगला में 'सबला' के लेखों पर चर्चा की गई। महिलाओं का मानना है कि सतयुग से आज तक पुरुषों के जीने के तरीके और औरत के तरीकों के लिए अलग-अलग मापदंड हैं। पुरुष जैसे भी चाहें औरत का इस्तेमाल कर सकते हैं। बहुत ही कम पुरुष ऐसे होते है जो औरत के नजरिए से सोचते हैं।

साक्षरता की मशाल

(अंक दिसम्बर-जनवरी)

मेंहदी बाग गांव में डेढ़ साल से साक्षरता कार्यक्रम चल रहा है। पर पूरे गांव में एक भी औरत पढ़ने की इच्छुक नहीं हैं। वे जिस हाल में हैं उसी में खुश हैं। पर इस लेख को पढ़ने के बाद जब चर्चा हुई तो काफी महिलाओं ने अपनी लड़कियों को पढ़ाने के लिए हामी भरी। कुछ ने तो अपनी बच्चियों को सेंटर भेजना शुरू भी कर दिया है।

सहारनपुर की बहनें लड़ रही हैं शराब के खिलाफ

गांव पक्काबाग की महिलाओं ने कहा, हमारी बात आदमी सुनते नहीं और सरकार से कहने का फायदा नहीं। सरकारी आदमी भी तो ड्यूटी पर पीते हैं, फिर प्रार्थना किससे की जाए। अभी हाल में एक नई चेतना देखने को मिली। शुरुआत की

गांव के लड़कों ने। लड़कों ने एक युवामंडल बनाया। फिर यह पता लगाया कि गांव में शराब की बिक्री वैध है या नहीं। फिर तहसीलदार को एक प्रार्थना पत्र लिखा। पर सरकार ने कोई सुनवाई नहीं की।

लड़कों ने फिर अपने स्तर पर इस समस्या से निपटने का इरादा किया। उन्होंने शराब-ठेकेदार से दुकान न खोलने की अपील की। जब वह नहीं माना तो जबर्दस्ती मार-पीटकर उसे भगा दिया। महिलाओं ने इस काम में भाग नहीं लिया पर उनकी रजामंदी युवकों के साथ थी। शराब की

दुकान बंद होने से लोगों का पीना काफी हद तक कम हो गया है। लड़कों का मानना है कि संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक पीना बिल्कुल बंद नहीं हो जाएगा। लड़कों का मानना है कि इस काम की प्रेरणा उन्हें महिलाओं की हिम्मत देखकर मिली है।

बहना समय के चक्के के साथ चलो

गांव नगला लोधा में महिलाएं अपने आप को इस लेख के साथ जोड़ नहीं पाई। उनका मानना है कि साइकिल अभियान लड़कों के लिए होता है। घर वाले लड़कियों को साइकिल चलाने की इजाज़त नहीं देते। साइकिल चलाना लड़कों का काम है, लड़कियों को यह शोभा नहीं देता।

समाज पीड़ित लड़की को न्याय दिलाए

चर्चा होने पर औरतों ने कहा, कि हम कौन से समाज से उम्मीद बांध रहे हैं। पुराने जमाने में लोग समाज की ज्यादा परवाह करते थे। आजकल किसी को किसी की परवाह नहीं है। जब एक पुरुष औरत को छोड़कर दूसरी शादी कर लेता है, तो घरवाले कुछ नहीं कहते। फिर हम समाज से क्यों डरें। 'सबला' में दी गई जानकारी 'समाज की भूमिका व समस्या' सबको पसंद तो आई पर अमल करने में थोड़ी कम व्यवहारिक लगती है।

मंगल कामना सिर्फ पुरुषों के लिए

इस लेख को लेकर लड़कियों ने सवाल उठाया कि समाज ने आखिर मर्द को ऊंचा दर्ज़ा क्यों दिया है? हर क्षेत्र में औरतें और पुरुष मिलजुल कर काम करते हैं। फिर मंगल कामना, व्रत आदि पुरुष के लिए ही क्यों? पुरुष को सुहाग चिन्हों की ज़रूरत क्यों नहीं पड़ती? इस पर औरतों ने कहा कि ये सब काम अगर पुरुष करें तो अच्छा नहीं लगेगा। वे सभी लड़कियों की बात से सहमत नहीं थीं। उनका कहना है कि ये परंपराएं समाज से जुड़ी हैं और हमें समाज में रहना है इसलिए इन बातों को मानना होगा। लड़कियां इन बातों का विरोध करती हैं, वे सम्मान चाहती हैं समाज में। वह सम्मान जो पुरुषों को मिलता है।

औरत और धर्म

(अंक अगस्त-सितम्बर)

सवाल उठा, 'क्या कोई पुरुष औरत की लंबी उम्र की प्रार्थना करता है? कुछ ने इस प्रश्न का मजाक उड़ाया। बोली, औरत तो कपड़ों की तरह होती है, मन आए जब बदल दो। औरत के लिए प्रार्थना करने से क्या फायदा? अगर औरत आदमी से पहले मरती है तो स्वर्ग जाती है। इसलिए उसे पति की लंबी उम्र की कामना करनी चाहिए। पति साथ हो तभी औरत की कद्र होती है।

वोट हमारा हक भी है और फर्ज भी

(अंक अगस्त-सितम्बर)

महिलाओं ने माना कि कोई भी अपनी सोच से वोट नहीं डालती, पुरुष अपनी इच्छानुसार उनसे वोट डलवाते हैं। कई बार कुछ पुरुष ही औरतों का वोट डाल देते हैं। पर अब कुछ सोच बदल रही है। औरतों का समझ आ गया है कि उन्हें अपनी राय के हिसाब से होशियार आदमी चुनने का हक़ है।

अभी हाल में ही भरतपुर दुग्ध उत्पादक संघ में एक अनपढ़ महिला निर्विरोध अध्यक्ष पद के लिए चुन ली गई। इस औरत ने मर्दों के बीच फूट का फायदा उठाया। पहले डेयरी में सिर्फ पुरुष ही काम करते थे। अब दो औरतें भी हैं, साथ ही सात औरतें सचिव पदों पर हैं। □

मेरी लाड़ली

कितना प्यार समेटे मेरी लाड़ली
मेरे सपने पूरे करती मेरी लाडली
मेरे आंगन के उपवन में
केवल एक ही फूल खिला है
मन को खुशियों से भरता है
जुही उसको नाम मिला है
जुही जैसी गंध बिखेरे मेरी लाड़ली
मैंने सोचा पुत्र हमारा
मेरे कुल का नाम करेगा
सात जनम के पूर्वजों की
यश-गाथा में वृद्धि करेगा
इस भ्रम के ताले को खोले मेरी लाड़ली
कोटि-कोटि तारों से बढ़कर, एक चंद्रमा जगमग करता
सारे जग का तम हरता है, सुंदर-स्वच्छ चांदनी भरता
सौ पुत्रों से श्रेष्ठ-गुणी है मेरी लाड़ली
ऐसा कोई कार्य नहीं है, नारी जिसे नहीं कर सकती
घर का कार्य और दफ्तर का
देश-प्रेम पर भी मर सकती
अबला की परिभाषाएं बदले मेरी लाड़ली

—वीर बहादुर 'मधु'

असमंजस्य

तू मुझे मिलता है खचाखच भीड़ से झुकी बस में
तेरे हाथ में लटकता टिफिन का डिब्बा
तेरे पैंट की उधड़न, उस पर कहीं-कहीं लगी तप्पियां
कमीज़ का कॉलर घिसा हुआ
हाथ के नाखूनों में मशीनों का मैल भरा हुआ
तेरा यह रूप मुझे तेरे हर पल के संघर्ष को जलाता है
तेरे पास जाने को ललचाता है
तुझसे बात करने को लुभाता है
तेरे अस्तित्व को सहारता है
तेरे साथ चलने को मनवाता है
पर अचानक भीड़ में
मेरे साथ खड़ा तू जब ललचाई नज़रों से
मुझे नोचता है
मेरे जिस्म पर चुपके ही सही हल्ला बोलता है
तब मेरा खून खौल जाता है
तू मेरा दुश्मन बन जाता है

—रुनु

मैं सीता नहीं हूं

मत कहो मुझे सीता
मैं सीता नहीं हूं।
न लेना मेरी अग्निपरीक्षा
वर्ना—
मैं तो जलूंगी ही,
तुम भी नहीं बच पाओगे
साथ-साथ जल जाओगे....
मैं उतनी पवित्र नहीं हूं कि—
तुम्हारे छूने से अपवित्र हो जाऊंगी
और....
उतनी अपवित्र भी नहीं कि
तुम्हें छू दूं तो
तुम अपवित्र हो जाओगे
मैं भी इंसान हूं
और तुम भी
जितने पवित्र तुम हो
उतनी ही मैं भी.....।

खेल

मुझे अग्निपरीक्षा से इंकार है
अंगारों संग खेलने से इंकार नहीं
तुम्हें अच्छा लगता है अंगारों से खेलना?
खेलोगे?
तो आओ
साथ-साथ खेलें
यकीन दिलाती हूं
तुम्हें जलने नहीं दूंगी
जब तक मैं जिंदा हूं—
यकीन की जमीन पर
एक दूसरे के लिए जलना अच्छा लगता है
अविश्वास का जहर हो तो
अग्निपरीक्षा में बच कर निकल जाना भी
दुष्कर लगता है

मणिमाला

क ख